बहस करना पिता जी का प्रिय शगल था। चाय-पानी या नाश्ता देने जाती तो पिता जी मुझे भी वहीं बैठने को कहते। वे चाहते थे कि मैं भी वहीं बैठूँ, सुनूँ और जानूँ कि देश में चारों ओर क्या कुछ हो रहा है। देश में हो भी तो कितना कुछ रहा था। सन् '42 के आंदोलन के बाद से तो सारा देश जैसे खौल रहा था, लेकिन विभिन्न राजनैतिक पार्टियों की नीतियाँ, उनके आपसी विरोध या मतभेदों की तो मुझे दूर-दूर तक कोई समझ नहीं थी। हाँ, क्रांतिकारियों और देशभक्त शहीदों के रोमानी आकर्षण, उनकी कुर्बानियों से ज़रूर मन आक्रांत रहता था।

सो दसवीं कक्षा तक आलम यह था कि बिना किसी खास समझ के घर में होने वाली बहसें सुनती थी और बिना चुनाव किए, बिना लेखक की अहमियत से परिचित हुए किताबें पढ़ती थी। लेकिन सन् '45 में जैसे ही दसवीं पास करके मैं 'फर्स्ट इयर' में आई, हिंदी की प्राध्यापिका शीला अग्रवाल से [redacted] ककहरा सीखा, एक साल पहले ही कॉलिज [redacted] न्होंने बाकायदा साहित्य की दुनिया में प्रवेश क[redacted]ना...खुद चुन-चुनकर किताबें दीं...पढ़ी हुई किता[redacted]त्य की दुनिया शरत्-प्रेमचंद से बढ़कर जैनेंद्र, अ[redacted]ौर फिर तो फैलती ही चली गई। उस समय जैन[redacted]शैली ने बहुत आकृष्ट किया था। 'सुनीता' (उप[redacted]न्यास 'शेखर : एक जीवनी' पढ़ा ज़रूर पर उस[redacted] नहीं पाया था। कुछ सालों बाद 'नदी के द्वीप[redacted]सी झोंक में शेखर को फिर से पढ़ गई...इस ब[redacted]थन का युग था...पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक, स[redacted]नचिह्न ही नहीं लग रहे थे, उन्हें ध्वस्त भी किया जा रहा था। इसी संदर्भ में जैनेंद्र का 'त्यागपत्र', भगवती बाबू का 'चित्रलेखा' पढ़ा और शीला अग्रवाल के साथ लंबी-लंबी बहसें करते हुए उस उम्र में जितना समझ सकती थी, समझा।

शीला अग्रवाल ने साहित्य का दायरा ही नहीं बढ़ाया था बल्कि घर की चारदीवारी के बीच बैठकर देश की स्थितियों को जानने-समझने का जो सिलसिला पिता जी ने शुरू किया था, उन्होंने वहाँ से खींचकर उसे भी स्थितियों की सक्रिय भागीदारी में बदल दिया। सन् '46-47 के दिन...वे स्थितियाँ, उसमें वैसे भी घर में बैठे रहना संभव था भला? प्रभात-फेरियाँ, हड़तालें, जुलूस, भाषण हर शहर का चरित्र था और पूरे दमखम और जोश-खरोश के साथ इन सबसे जुड़ना हर युवा का उन्माद। मैं भी युवा थी और शीला अग्रवाल की जोशीली बातों ने रगों में बहते खून को लावे में बदल दिया था। स्थिति यह हुई

कि एक बवंडर शहर में मचा हुआ था और एक घर में। पिता जी की आज़ादी की सीमा यहीं तक थी कि उनकी उपस्थिति में घर में आए लोगों के बीच उठूँ-बैठूँ, जानूँ-समझूँ। हाथ उठा-उठाकर नारे लगाती, हड़तालें करवाती, लड़कों के साथ शहर की सड़कें नापती लड़की को अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद बर्दाश्त करना उनके लिए मुश्किल हो रहा था तो किसी की दी हुई आज़ादी के दायरे में चलना मेरे लिए। जब रगों में लहू की जगह लावा बहता हो तो सारे निषेध, सारी वर्जनाएँ और सारा भय कैसे ध्वस्त हो जाता है, यह तभी जाना और अपने क्रोध से सबको थरथरा देने वाले पिता जी से टक्कर लेने का जो सिलसिला तब शुरू हुआ था, राजेंद्र से शादी की, तब तक वह चलता ही रहा।

यश-कामना बल्कि कहूँ कि यश-लिप्सा, पिता जी की सबसे बड़ी दुर्बलता थी और उनके जीवन की धुरी था यह सिद्धांत कि व्यक्ति को कुछ विशिष्ट बन कर जीना चाहिए...कुछ ऐसे काम करने चाहिए कि समाज में उसका नाम हो, सम्मान हो, प्रतिष्ठा हो, वर्चस्व हो। इसके चलते ही मैं दो-एक बार उनके कोप से बच गई थी। एक बार कॉलिज से प्रिंसिपल का पत्र आया कि पिता जी आकर मिलें और बताएँ कि मेरी गतिविधियों के कारण मेरे खिलाफ़ अनुशासनात्मक कार्रवाई क्यों न की जाए? पत्र पढ़ते ही पिता जी आग-बबूला। "यह लड़की मुझे कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रखेगी...पता नहीं क्या-क्या सुनना पड़ेगा वहाँ जाकर! चार बच्चे पहले भी पढ़े, किसी ने ये दिन नहीं दिखाया।" गुस्से से भन्नाते हुए ही वे गए थे। लौटकर क्या कहर बरपा होगा, इसका अनुमान था, सो मैं पड़ोस की एक मित्र के यहाँ जाकर बैठ गई। माँ को कह दिया कि लौटकर बहुत कुछ गुबार निकल जाए, तब बुलाना। लेकिन जब माँ ने आकर कहा कि वे तो खुश ही हैं, चली चल, तो विश्वास नहीं हुआ। गई तो सही, लेकिन डरते-डरते। "सारे कॉलिज की लड़कियों पर इतना रौब है तेरा...सारा कॉलिज तुम तीन लड़कियों के इशारे पर चल रहा है? प्रिंसिपल बहुत परेशान थी और बार-बार आग्रह कर रही थी कि मैं तुझे घर बिठा लूँ, क्योंकि वे लोग किसी तरह डरा-धमकाकर, डाँट-डपटकर लड़कियों को क्लासों में भेजते हैं और अगर तुम लोग एक इशारा कर दो कि क्लास छोड़कर बाहर आ जाओ तो सारी लड़कियाँ निकलकर मैदान में जमा होकर नारे लगाने लगती हैं। तुम लोगों के मारे कॉलिज चलाना मुश्किल हो गया है उन लोगों के लिए।" कहाँ तो जाते समय पिता जी मुँह दिखाने से घबरा रहे थे और कहाँ बड़े गर्व से कहकर आए कि यह तो पूरे देश की पुकार है...इस पर कोई कैसे रोक लगा सकता है भला? बेहद गद्‌गद स्वर में पिता जी यह सब सुनाते रहे और मैं अवाक्। मुझे न अपनी आँखों पर विश्वास हो रहा था, न अपने कानों पर। पर यह हकीकत थी।

एक घटना और। आज़ाद हिंद फ़ौज के मुकदमे का सिलसिला था। सभी कॉलिजों, स्कूलों, दुकानों के लिए हड़ताल का आह्वान था। जो-जो नहीं कर रहे थे, छात्रों का एक बहुत

© NCERT not to be republished

बड़ा समूह वहाँ जा-जाकर हड़ताल करवा रहा था। शाम को अजमेर का पूरा विद्यार्थी-वर्ग चौपड़ (मुख्य बाज़ार का चौराहा) पर इकट्ठा हुआ और फिर हुई भाषणबाज़ी। इस बीच पिता जी के एक निहायत दकियानूसी मित्र ने घर आकर अच्छी तरह पिता जी की लू उतारी, "अरे उस मन्नू की तो मत मारी गई है पर भंडारी जी आपको क्या हुआ? ठीक है, आपने लड़कियों को आज़ादी दी, पर देखते आप, जाने कैसे-कैसे उलटे-सीधे लड़कों के साथ हड़तालें करवाती, हुड़दंग मचाती फिर रही है वह। हमारे-आपके घरों की लड़कियों को शोभा देता है यह सब? कोई मान-मर्यादा, इज़्ज़त-आबरू का खयाल भी रह गया है आपको या नहीं?"

वे तो आग लगाकर चले गए और पिता जी सारे दिन भभकते रहे, "बस, अब यही रह गया है कि लोग घर आकर थू-थू करके चले जाएँ। बंद करो अब इस मन्नू का घर से बाहर निकलना।"

इस सबसे बेखबर मैं रात होने पर घर लौटी तो पिता जी के एक बेहद अंतरंग और अभिन्न मित्र ही नहीं, अजमेर के सबसे प्रतिष्ठित और सम्मानित डॉ. अंबालाल जी बैठे थे। मुझे देखते ही उन्होंने बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया, आओ, आओ मन्नू। मैं तो चौपड़ पर तुम्हारा भाषण सुनते ही सीधा भंडारी जी को बधाई देने चला आया। 'आई एम रिअली प्राउड ऑफ़ यू'...क्या तुम घर में घुसे रहते हो भंडारी जी...घर से निकला भी करो। 'यू हैव मिस्ड

समथिंग', और वे धुआँधार तारीफ़ करने लगे–वे बोलते जा रहे थे और पिता जी के चेहरे का संतोष धीरे-धीरे गर्व में बदलता जा रहा था। भीतर जाने पर माँ ने दोपहर के गुस्से वाली बात बताई तो मैंने राहत की साँस ली।

आज पीछे मुड़कर देखती हूँ तो इतना तो समझ में आता ही है क्या तो उस समय मेरी उम्र थी और क्या मेरा भाषण रहा होगा! यह तो डॉक्टर साहब का स्नेह था जो उनके मुँह से प्रशंसा बनकर बह रहा था या यह भी हो सकता है कि आज से पचास साल पहले अजमेर जैसे शहर में चारों ओर से उमड़ती भीड़ के बीच एक लड़की का बिना किसी संकोच और झिझक के यों धुआँधार बोलते चले जाना ही इसके मूल में रहा हो। पर पिता जी! कितनी तरह के अंतर्विरोधों के बीच जीते थे वे! एक ओर 'विशिष्ट' बनने और बनाने की प्रबल लालसा तो दूसरी ओर अपनी सामाजिक छवि के प्रति भी उतनी ही सजगता। पर क्या यह संभव है? क्या पिता जी को इस बात का बिलकुल भी अहसास नहीं था कि इन दोनों का तो रास्ता ही टकराहट का है?

सन् '47 के मई महीने में शीला अग्रवाल को कॉलिज वालों ने नोटिस थमा दिया—लड़कियों को भड़काने और कॉलिज का अनुशासन बिगाड़ने के आरोप में। इस बात को लेकर हुड़दंग न मचे, इसलिए जुलाई में थर्ड इयर की क्लासेज़ बंद करके हम दो-तीन छात्राओं का प्रवेश निषिद्ध कर दिया।

हुड़दंग तो बाहर रहकर भी इतना मचाया कि कॉलिज वालों को अगस्त में आखिर थर्ड इयर खोलना पड़ा। जीत की खुशी, पर सामने खड़ी बहुत-बहुत बड़ी चिर प्रतीक्षित खुशी के सामने यह खुशी बिला गई।

शताब्दी की सबसे बड़ी उपलब्धि...15 अगस्त 1947

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखिका के व्यक्तित्व पर किन-किन व्यक्तियों का किस रूप में प्रभाव पड़ा?
2. इस आत्मकथ्य में लेखिका के पिता ने रसोई को 'भटियारखाना' कहकर क्यों संबोधित किया है?
3. वह कौन-सी घटना थी जिसके बारे में सुनने पर लेखिका को न अपनी आँखों पर विश्वास हो पाया और न अपने कानों पर?
4. लेखिका की अपने पिता से वैचारिक टकराहट को अपने शब्दों में लिखिए।
5. इस आत्मकथ्य के आधार पर स्वाधीनता आंदोलन के परिदृश्य का चित्रण करते हुए उसमें मन्नू जी की भूमिका को रेखांकित कीजिए।

रचना और अभिव्यक्ति

6. लेखिका ने बचपन में अपने भाइयों के साथ गिल्ली डंडा तथा पतंग उड़ाने जैसे खेल भी खेले किंतु लड़की होने के कारण उनका दायरा घर की चारदीवारी तक सीमित था। क्या आज भी लड़कियों के लिए स्थितियाँ ऐसी ही हैं या बदल गई हैं, अपने परिवेश के आधार पर लिखिए।
7. मनुष्य के जीवन में आस-पड़ोस का बहुत महत्त्व होता है। परंतु महानगरों में रहने वाले लोग प्रायः 'पड़ोस कल्चर' से वंचित रह जाते हैं। इस बारे में अपने विचार लिखिए।
8. लेखिका द्वारा पढ़े गए उपन्यासों की सूची बनाइए और उन उपन्यासों को अपने पुस्तकालय में खोजिए।
9. आप भी अपने दैनिक अनुभवों को डायरी में लिखिए।

© NCERT not to be republished

भाषा-अध्ययन

10. इस आत्मकथ्य में मुहावरों का प्रयोग करके लेखिका ने रचना को रोचक बनाया है। रेखांकित मुहावरों को ध्यान में रखकर कुछ और वाक्य बनाएँ–

(क) इस बीच पिता जी के एक निहायत दकियानूसी मित्र ने घर आकर अच्छी तरह पिता जी की लू उतारी।

(ख) वे तो आग लगाकर चले गए और पिता जी सारे दिन भभकते रहे।

(ग) बस अब यही रह गया है कि लोग घर आकर थू-थू करके चले जाएँ।

(घ) पत्र पढ़ते ही पिता जी आग-बबूला।

पाठेतर सक्रियता

- इस आत्मकथ्य से हमें यह जानकारी मिलती है कि कैसे लेखिका का परिचय साहित्य की अच्छी पुस्तकों से हुआ। आप इस जानकारी का लाभ उठाते हुए अच्छी साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने का सिलसिला शुरू कर सकते हैं। कौन जानता है कि आप में से ही कोई अच्छा पाठक बनने के साथ-साथ अच्छा रचनाकार भी बन जाए।
- लेखिका के बचपन के खेलों में लँगड़ी टाँग, पकड़म-पकड़ाई और काली-टीलो आदि शामिल थे। क्या आप भी यह खेल खेलते हैं। आपके परिवेश में इन खेलों के लिए कौन-से शब्द प्रचलन में हैं। इनके अतिरिक्त आप जो खेल खेलते हैं उन पर चर्चा कीजिए।
- स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भी सक्रिय भागीदारी रही है। उनके बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए और उनमें से किसी एक पर प्रोजेक्ट तैयार कीजिए।

© NCERT not to be republished

शब्द-संपदा

अहंवादी	–	घमंडी
भग्नावशेष	–	खंडहर (टूटे-फूटे हिस्से)
विस्फारित	–	और अधिक फैलना (बढ़ाना)
आक्रांत	–	कष्टग्रस्त
निषिद्ध	–	जिस पर रोक लगाई गई हो
वर्चस्व	–	दबदबा
राजेंद्र	–	यहाँ हिंदी के प्रमुख कथाकार एवं हंस पत्रिका के संपादक राजेंद्र यादव के बारे में कहा गया है
महाभोज	–	मन्नू भंडारी का चर्चित उपन्यास है। दा साहब उसके प्रमुख पात्र हैं

नमूने के तौर पर यहाँ 9 वर्षीय शिवांक की डायरी का एक पन्ना दिया जा रहा है–

30 मार्च, 2001 शुक्रवार
आज सुबह पापा ने जल्दी से मुझे उठाया और कहा, "देखो-देखो, बारिश हो रही है, ओले गिर रहे हैं। बहुत ठंड पड़ रही है।" फिर मैं जल्दी से उठा और पापा से कहा, "दीदी को भी उठाओ।" फिर हमने देखा कि हमारे घर के सामने वाले ग्राउंड में हरी-हरी घास पर सफ़ेद-सफ़ेद ओले गिर रहे थे। ऐसा लग रहा था किसी ने चमेली के फूल गिरा रखे हैं। बहुत अच्छा लग रहा था। ओले पड़ रहे थे। बारिश हो रही थी, चिड़िया भाग रही थी, कौए परेशान थे, पेड़ काँप रहे थे, बिजली चमक रही थी, बादल डरा रहे थे। एक चिड़िया हमारी खिड़की पर डरी-डरी बैठी थी। बहुत देर तक बैठी रही। फिर उड़ गई। अभी तक कोई बच्चा खेलने नहीं निकला। इसलिए मैं आज जल्दी डायरी लिख रहा हूँ। सुबह के दस बजे हैं। मैं अपना सीरियल देखने जा रहा हूँ। आज मेरा न्यू इंक पेन और पेंसिल बॉक्स आया। आज दोपहर को धूप निकली, फिर हम खेलने निकले। आजकल हम लोग मिट्टी के गोले बना के सुखा देते हैं फिर हम उनके ऊपर पेंटिंग करते हैं उसके बाद फिर उनसे खेलते हैं।

जानिए लँगड़ी की कुश्ती कैसे खेली जाती है–

एक स्थान में बीच की लाइन के बराबर फासले पर दो लाइनें खींची जाती हैं। दो खिलाड़ी बीच की लाइन पर आकर लँगड़ी बाँधकर अपने मुकाबले वाले को अपनी-अपनी लाइन के पार खींच ले जाने की कोशिश करते हैं। जिसकी लँगड़ी टूट जाती है अथवा जो खिंच जाता है उसकी हार होती है। यह खेल टोलियों में भी खेला जाता है। दिए हुए समय के अंदर जिस टोली के अधिक बच्चे लँगड़ी तोड़ देते हैं अथवा खिंच जाते हैं उस टोली की हार होती है।

© NCERT not to be republished